उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—५ नवम्बर—१९८६ अंक—११

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय:

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२५० रु०
वार्षिक	२० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	२८ रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

जब तराजू का एक पल्ला दूसरे पल्ले से भारी होकर झुक जाता है तो उसका निचला कांटा ऊपरवाले कांटे से अलग हट जाता है। इसी प्रकार जब मनुष्य का मन कामिनी-कांचन के भार से संसार की ओर झुक जाता है तो वह ईश्वर में एकाग्र नहीं हो पाता, वह उनसे दूर हट जाता है।

(२)

एक प्रकार की जहरीली मकड़ी होती है; वह यदि काट ले तो कोई दवा लगाने के पहले मन्त्र के सहारे हल्दी का धुआं देते हुए उसका विष उतारना पड़ता है, उसके बाद ही दूसरी दवाइयों का असर हो पाता है, अन्यथा नहीं। इसी प्रकार, जीव को यदि कामिनी-कांचन रूपी जहरीली मकड़ी काट ले तो पहले त्यागरूपी मन्त्र से उसका जहर उतारना पड़ता है, तभी साधन-भजन सफल हो पाता है।

(३)

भक्ति के द्वारा इन्द्रियां अपने आप वश में आ जाती हैं, बड़ी सरलता से उनका संयम हो जाता है। ईश्वर के प्रति प्रेम जितना अधिक बढ़ेगा, शरीर-सुख भोगने की इच्छा उतनी ही घटती जाएगी। जिस दिन घर में सन्तान की मृत्यु हो जाती है उस दिन क्या पति-पत्नी का मन देह-सुख की ओर जा सकता है?

(४)

अगर तुम्हें ईश्वर लाभ करने की इच्छा हो तो, दृढ़ विश्वास के साथ उनका नाम लेते जाओ और सत्-असत् का विवेक किया करो।

विनय

—डा॰ केदारनाथ लाभ

इतनी कृपा करो। (ठाकुर)
नाथ ! सुनो विनती अनाथ की अपनी शरण वरो ।। (ठाकुर)

अशरण-शरण गदाधर अब भव-सागर पार करो।
मैं हूँ अति मतिमन्द, पिता तुम, लो ऊँगली पकड़ो ।। (ठाकुर)
कुपथ-कुपथ रथ रहा दौड़ता सत्पथ ओर करो।
तुम में मन न रमण करता तो तुम मन में बिहरो ।। (ठाकुर)

रस-लोभी मैं चिर इन्द्रिय-प्रिय, प्रभु तुम मत बिगड़ो।
मैं तुमको धर सकूँ नहीं तो तुम ही बाँह धरो ।। (ठाकुर)
दाह-दग्ध जीवन-मरु में बन करुणा-धन पसरो।
अमल प्रेम का सुर कामातुर उर में देव भरो ।। (ठाकुर)

हृदय-कमल में हे ज्योतिर्मय ! आसन ग्रहण करो।
हे नरदेव ! देव ! जन-तारण ! अब न विलम्ब करो ।। (ठाकुर)
दोष-दृष्टि हर, कर पावन मन, जीवन धन्य करो।
व्यथा-कथा क्या कहूँ दुसह दुःख, प्रभुवर पीर हरो ।। (ठाकुर)
इतनी कृपा करो। (ठाकुर)

संपादकीय सम्बोधन

मन, चलो निज निकेतने !

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

बड़ी तन्मयता से बातें हो रही थीं। रोचक प्रसंग था। एक मित्र अपनी पारिवारिक समस्याओं की जटिलता से उद्विग्न होकर उस दिन मुझसे मिलने आये थे। वे बहुत उद्विग्न थे। पत्नी बात-बात पर कारण-अकारण झगड़ पड़ती हैं। बच्चे अपने मन के हैं। बातें नहीं मानते। घर नरक हो गया है। यही उनकी चिन्ता थी। दुःख के दुर्दान्त थपेड़ों और कशाघातों से किस प्रकार बचकर अखण्ड आनन्द के धाम में निवास किया जा सकता है—इसी प्रसंग पर हम परस्पर विचार कर रहे थे।

बड़ी तन्मयता से बातें हो रही थीं। अचानक मित्र ने अपनी कलाई घुमायी। घड़ी पर दृष्टि डाली और कुछ अधिक ही उद्विग्न होकर बोल उठे—'क्षमा कीजिएगा, उठने का तो मन नहीं करता, पर अब जाना चाहता हूं। नमस्कार।' 'कहाँ जाना है ?—मैंने पूछा।' 'क्यों, घर—अपने घर। पत्नी प्रतीक्षा कर रही होंगी। मैंने शाम के पहले ही घर आ जाने का वचन दिया है।'—उनका उत्तर था। 'क्या कोई अत्यावश्यक कार्य है ?'—मैंने पुनः जिज्ञासा की। 'नहीं, बस, यूँ ही। थोड़ा विश्राम करूँगा। कुछ भी हो, आखिर अपना घर तो वही है।'— कहते हुए वे उठ खड़े हुए। चप्पलें पहनीं और आगे बढ़ गये।

घर जाना जरूरी है। हम बहुत देर तक घर से बाहर नहीं रह सकते। हम बहुत दिनों तक घर से बाहर नहीं रह सकते। बाहर रहने पर अपने घर की याद सालने-सताने लगती है। मन अपने घर की ओर चलने के लिए छटपटाने लगता है।

घर जाना जरूरी है। दफ्तरों में काम करनेवाले बाबू-अफसर, खेतों-कारखानों में काम करनेवाले किसान-मजूर, स्कूलों-कॉलेजों के शिक्षक-छात्र-कर्मचारी सब के सब दिन ढलते ही अपने घर जाने के लिए चंचल हो उठते हैं। घर जाना जरूरी है।

सच है, घर की—अपने घर की बात ही कुछ और होती है। बड़े-से-बड़े राज-प्रासादों, होटलों और गेस्ट हाउसों (अतिथिशालाओं) में भी वह सुख नहीं मिलता जो अपनी फूस की झोंपड़ी में भी मिल जाता है।—स्वगृहे सुखमुत्तमम्—अपने घर में ही श्रेष्ठ सुख, उत्तम सुख मिलता है। क्यों नहीं ! अपना घर जो है वह ! घर जाना जरूरी है - अपना घर।

लेकिन प्रश्न यह है कि कहाँ है अपना घर ? अपना घर —जो हमारा वास्तविक ठौर हो; जहाँ हमें सच्चा सुख, सच्ची शान्ति और सच्चा विश्राम मिले; जो वस्तुतः हमारा आनन्दधाम—आनन्द-निकेतन हो। कहाँ है हमारा वह अपना घर—अपना निकेतन ?

अपने घर में जाने की चाह हमारी स्वाभाविक चाह है। अपने घर में रहने की माँग हमारी वास्तविक माँग है। अपने घर की ललक हमारी सच्ची ललक है। लेकिन, अपने घर की पहचान का न होना ही हमारी सबसे बड़ी समस्या है। अपने घर को नहीं जानना ही हमारी सबसे बड़ी मुसीबत है।

नतीजा है, घर के नाम पर हम जहाँ पहुँच जाते हैं, वहाँ चैन नहीं, विश्राम नहीं, सुख नहीं, शान्ति नहीं। हम घर छोड़ने को तत्पर हो जाते हैं। लगता है, घर से सराय अच्छी, घर से डाकबंगला अच्छा, घर से मधुशाला बेहतर। कभी सोचा है आपने, आखिर क्यों होता है ऐसा ?

जब तक हम उन कुछ कमरों को– जहाँ हमारी पत्नी रहती है, बच्चे रहते हैं, नौकर और पालतू कुत्ते रहते हैं, टी०वी०, फ्रीज, कार और फोन से जो सज्जित हैं, सोफा, शृंगार के साधनों तथा सुन्दरियों की तस्वीरों से जिनकी शोभा बढ़ती है.– 'अपना घर' मानते रहेंगे, हम सुख से, आनन्द से नहीं रह सकते, नहीं, वह हमारा पड़ाव है, हमारा 'अपना घर' नहीं। हमने 'पड़ाव' को अपना घर समझ लिया है। यही सारे अनर्थों की जड़ है।

स्वामी विवेकानन्द ने प्रथम दर्शन के अवसर पर श्रीरामकृष्ण को एक बड़ा ही मार्मिक गीत सुनाया था। उसे सुनते ही ठाकुर समाधिस्थ हो गये थे। गीत की प्रारंभिक पंक्तियाँ हैं—

मन चलो निज निकेतने।
संसार विदेशे, विदेशीर बेशे, भ्रमो केनो अकारणे॥
विषय पंचक आर भूतगण, सब तोर पर केउ नय आपन।
पर प्रेमे केनो हये मगन, भूलिछो आपन जने॥

बड़ा सारगर्भित गीत है यह ! अरे मन ! अपने घर चलो। इस संसार रूपी विदेश में विदेशी की वेशभूषा धारण कर व्यर्थ क्यों भटक रहे हो ? रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द इन पाँच विषयों तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश– इन पंच भूतों में से कोई भी तुम्हारा अपना नहीं है। ये सब पराये हैं। तुम पर-प्रेम में मगन होकर अपने जन को क्यों भूल गये हो ?

गीत में और भी पंक्तियाँ हैं, और हर पंक्ति भावपूर्ण तथा प्रेरक है, किन्तु हमारे लिए इतना समझ लेना भी काफी है। हम अपनी इन्द्रियों को, आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा को, अपनी देह को कितना प्यार करते हैं ! फिर जिनसे रूप; रस, गंध स्पर्श और ध्वनि का आनन्द मिलता है उनके पीछे कितने दीवाने, कितने बेचैन रहते हैं हम ! लेकिन न यह देह हमारी है, न ये इन्द्रियाँ हमारी अपनी हैं और न वे तत्व हमारे हैं जिनसे हमारी इन्द्रियों को क्षणिक सुख मिलता है। किन्तु हम हैं कि इन्हें ही अपना प्रिय मान बैठे हैं। जो पराये हैं उन्हें अपना मान लिया है हमने, और जहाँ कहीं ये हमें प्राप्त होते हैं, कुछ ही दिनों के लिए सही, उसे ही हम अपना घर मान बैठे हैं। यही विडम्बना है, यही विपत्ति है। फिर यहाँ विश्राम कहाँ ? शान्ति, सुख और आनन्द कहाँ ? तो कहाँ है हमारा घर ?

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे–"मुसाफिर को नये शहर में पहुँचकर पहले रात विताने के लिए किसी सुरक्षित डेरे का बन्दोबस्त कर लेना चाहिए। डेरे में अपना सामान रखकर वह निश्चिन्त होकर शहर देखते हुए घूम सकता है। परन्तु यदि रहने का बन्दोबस्त न हो तो रात के समय अँधेरे में विश्राम के लिए जगह खोजने में उसे बहुत तकलीफ उठानी पड़ती है। उसी प्रकार, इस संसार रूपी विदेश में आकर मनुष्य को पहले ईश्वररूपी चिर विश्रामधाम प्राप्तकर लेना चाहिए, फिर वह निर्भय होकर अपने नित्य कर्त्तव्यों को करते हुए संसार में भ्रमण कर सकता है। किन्तु यदि ऐसा न हो तो जब मृत्यु की घोर अन्धकारपूर्ण भयंकर रात्रि आएगी तब उसे अत्यन्त क्लेश और दुःख भोगना पड़ेगा।" कैसी सच्ची,

मार्मिक और अनुभवसिद्ध बात है ! प्रभु ही हमारे शरणस्थल हैं, चिर विश्रामधाम हैं; सनातन और अपना घर हैं। हमें उसी घर की तलाश करनी चाहिए। हमारी पुकार उसी घर के लिए होनी चाहिए। हमारी मांग उसी घर की हो। श्रीरामचन्द्र की कृपा से तुलसीदास को वह घर मिल गया था—

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदास हूँ।
पायो परम विश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥

उन्होंने अपने घर को पहचान लिया था। राम के चरणों में ही परम-विश्राम है। और जहाँ परम विश्राम मिले वही तो हमारा घर है। तुलसी की माँग इसी घर की थी—

अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्बान।
जनम-जनम सिय-राम-पद, यह वरदान न आन॥

+ + +

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि जिमि प्रिय दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

ये राम, कृष्ण, शिव या रामकृष्ण कहीं बाहर नहीं हैं। हमारे भीतर ही हैं। हमारा घर हमारे भीतर ही है। यह घर तो हमारा स्वरूप ही है। हम अपने स्वरूप को नहीं पहचानते, इसलिए बाहर के कुछ कमरों को अपना घर मानने की भूल कर बैठते हैं। और इसीलिए यह दुःख, यह बेचैनी है। ईंट-सुर्खी-सिमेंट से बने कमरों को जब तक हम अपना घर मानते रहेंगे, हम विषयों-वासनाओं की मृगतृष्णा में भटकते ही रहेंगे। इस भटकाव का कहीं अन्त नहीं। इस दुःखद, अन्तहीन और आत्मघाती यात्रा से हमें बचना ही होगा। **"न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति"**—जो अपनी ही आत्मा में मग्न रहते हैं, अपनी ही आत्मा में रमण करते हैं, वे विषयों की मृगतृष्णा में नहीं भटकते।

अपने 'आत्म-गृह', 'आत्म-निकेतन' में रहने पर ही हमें परम विश्रामधाम की उपलब्धि हो सकेगी, शान्ति और आनन्द के मणि-रत्न प्राप्त हो सकेंगे। श्रीरामकृष्ण प्रायः ही यह गीत भाव-विभोर होकर गाया करते थे—

आपनाते आपनि थेको मन, जेओ नाको कारू घरे।
जा चावी ता वसे पावी, खोजो निज अन्तःपुरे।
परमधन ऐ परशमणि, जा चावी ता दिते पारे
कत मणि पड़े आछे चिन्तामणिर नाच दुआरे॥

अरे मन, अपने आप में मग्न रहो, किसी और के घर नहीं जाओ। जो चाहोगे सो सब बैठे ही पाओगे। अपने अन्तःपुर में ही उसे ढूँढो। यह पारसमणि ही परमधन है। जो चाहोगे सब कुछ यह दे सकता है। इस चिन्तामणि के द्वार पर कितनी ही मणियाँ धरी पड़ी हैं।

अगर हम अपने अंतःपुर में रहना जान लेते हैं तो अपने सही घर को भी पहचान लेते हैं। अपने इसी घर की ओर, इसी परम विश्राम-धाम की ओर, इसी आनन्द-निकेतन की ओर जाने की आकुलता-विकलता हमें होनी चाहिए। इसी घर की ओर जाने का प्रयास हमें करना चाहिए।

भगवान श्रीरामकृष्ण, श्री माँ सारदा और स्वामीजी हम सब को अपने सही घर की पहचान कराकर अपने विश्रामधाम, निजी निकेतन की ओर चलने की प्रेरणा, प्रोत्साहन और प्रभुता प्रदान करें—यही उनसे मेरी आंतरिक प्रार्थना है। जय श्रीरामकृष्ण ! ●

तुम न आयी तो मैं इसी खड्ग से अपना मस्तक काट डालूँगा। इस अर्थहीन जीवन का अन्त कर देना ही उचित है।" माँ ने ठाकुर को भी दर्शन दिये। ऐसे ही आवेश की आवश्यकता है।

(४) ईश्वर का नाम लेने के लिए किसी स्थान या समय विशेष की आवश्यकता नहीं। उन्हें हर समय याद करना चाहिए, हर समय उनकी बातें सोचनी चाहिए। एक जगह रामप्रसाद ने कहा है—

"जब बिस्तर पर लेटो तो सोचो
माँ को साष्टांग प्रणाम कर रहे हो।
जब सोओ तो माँ का ध्यान करो।
जब खाओ तो सोचो
श्यामा माँ को नैवेद्य चढ़ा रहे हो।"

(५) यदि गीता, भागवत, कथामृत, (***)एवं विवेक चूड़ामणि पढ़ी जाय और उनमें दिये गये निर्देशों का पालन किया जाय तो सारे प्रश्न स्वयमेव उत्तरित हो जाते हैं।

मेरा स्वास्थ्य ठीक है। समिति के सारे सदस्य सकुशल हैं। मेरा प्रेम और आशीष ग्रहण करो।

तुम्हारा
अभेदानन्द

*** श्री रामकृष्ण कथामृत, श्री ठाकुर के अनन्य भक्त श्री महेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा लिखित उनके उपदेशों का संग्रह है। मूल बँगला ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्रसिद्ध हिन्दी कवि श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने किया है जो श्रीरामकृष्ण वचनामृत नाम से प्रकाशित है।

(२)

रामकृष्ण वेदान्त आश्रम,
दार्जिलिंग
मई ११, १९२८

प्रिय गणेश,

तुम्हारा पत्र मिला। अपने पिता के निधन पर शोक करने के बदले तुमने ठाकुर से उनकी आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना की है यह सर्वथा एक ज्ञानी सदृश कार्य है। साधारणतः ऐसे में लोग शोकाकुल हो उठते हैं और उन्हें मानसिक शान्ति नहीं मिलती। मैं सर्वदा ठाकुर से तुम्हारे पिता की दिवंगत आत्मा के मंगलार्थ प्रार्थना करता हूँ।

शोक एक भयंकर चीज है। इसके प्रभाव में मनुष्य विवेक खो देता है। गीता सुनकर एवं भगवान के विश्व रूप के दर्शन करके भी अर्जुन अपने पुत्र अभिमन्यु की मृत्यु से सन्तप्त हो गये थे। हमने ठाकुर से सुना है कि केशव बाबू की मृत्यु का समाचार सुन वे इतने अभिभूत हो गये थे कि तीन दिनों तक बिस्तर नहीं छोड़ पाये और उन्हें ऐसा लगता था मानों शरीर का कोई अंग पक्षाघात ग्रस्त हो गया हो। अहा! ठाकुर की केशव बाबू के लिए कितनी प्रीति थी! तुम्हारी माँ पति के देहान्त से शोक सन्तप्त हैं। तुम्हें उन्हें अच्छी पुस्तकें पढ़कर सुनानी चाहिए। इससे उन्हें सान्त्वना मिलेगी।

हमने देखा है कि ठाकुर के पास जब कोई शोकाकुल व्यक्ति आता था तो उनकी आँखों में भी आँसू आ जाते थे। ऐसे में ठाकुर उन्हें कभी नहीं कहते थे कि ब्रह्म ही

१. स्व० केशव चन्द्र सेन श्री ठाकुर के समकालीन एवं बंगाल के अग्रगण्य ब्राह्मभक्त तथा समाज सुधारक थे। केशव और ठाकुर को एक दूसरे के लिए अन्यतम प्रेम था।—अनु०

सत्य है और संसार मिथ्या है या यह कि मानव शरीर की यही नियति है। वे भक्ति विषयक चर्चा कर या भक्तिमूलक गीत गाकर उस व्यक्ति को सान्त्वना देने की चेष्टा करते थे। अपने इस व्यवहार से ठाकुर लोगों के अत्यन्त प्रिय हो गये थे और सभी समझते मानो ठाकुर उन्हीं में से एक हों। इससे उनका शोक सन्तप्त मन भी शान्त हो जाता था।

काशीपुर उद्यान में ठाकुर के महाप्रयाण से हम सब अत्यन्त व्याकुल हो गये थे। स्वामीजी तो शोकाकुल हो गंगा में शरीर त्याग करने तक को तैयार थे। कुछ दिनों तक श्रीमां[2] ऊँचे स्वर में विलाप करती रही "मां, तुम कहां चली गयी? कहां चली गयी मां तुम?" फिर एक दिन ठाकुर श्रीमां के समक्ष प्रकट होकर बोले "तुम क्यों रो रही हो? यह देखो मैं तुम्हारे निकट ही हूँ, इस कमरे से उस कमरे में चला गया हूँ, बस।"

तुम्हारी नोकरी का क्या हुआ? नदिया के महाराजा से क्या तुम मिले? मुझे पूर्ण विवरण देना। तुम्हारा मन शान्त रहे और तुम किसी भी खतरे से मुक्त रहो, ठाकुर को मेरी यह एकमात्र प्रार्थना है। मैं तुम्हारे लिए चिन्तित हूँ; सुविधानुसार मुझे पत्र देने की चेष्टा करना। मेरा प्रेम एवं आशीष ग्रहण करो।

तुम्हारा
अभेदानन्द

२. श्री ठाकुर की लीला सहधर्मिणी श्रमती श्रीसारदामणि देवी।—अनु०

*

आत्मविश्वास ही कुंजी है

स्वामी सत्यरूपानन्द
बेलुड़ मठ।

[रामकृष्ण संघ के स्वामी सत्यरूपानन्दजी बताते हैं कि ईश्वर में आस्थाके साथ-साथ स्वयं में आस्था ही वह कुंजी है जो श्रेष्ठ उपलब्धियों के दरवाजे खोल देती है। इस सत्य को वे स्वामी विवेकानन्द के शिकागो अनुभव के दृष्टांत द्वारा स्पष्ट करते हैं।—सं०]

आज से प्राय: ९२ वर्ष पूर्व एक तीस वर्षीय नवयुवक शिकागो रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर उतरा जो उस महानगर से पूर्ण अनभिज्ञ था। जब वह उस वड़े शहर के लिए रवाना हुआ था उसके साथ परिचय हेतु कुछ चिट्ठियां भी थीं। लेकिन उसने उन्हें रास्ते में ही खो दिया। यहां तक कि वह पता भी वह खो चुका था जहां उसे जाना था। वह शहर के उस भाग में पहुँचा जहां अधिकतर लोग जर्मन बोलते थे। नवयुवक जर्मन नहीं जानता था। उसने अपने आपको अंग्रेजी बोलकर समझाने की कोशिश की; लेकिन दुर्भाग्यवश उसे कोई समझ नहीं सका। यहां तक कि वह किसी सराय के संबंध में भी जानकारी नहीं प्राप्त कर सका जहां वह रात्रि बिता सके।

रात्रि हो आयी और नवयुवक नहीं समझ पाया कि

कहाँ जाय। रेलपथ के पास ही माल के बारे में लकड़ी का एक बहुत बड़ा खाली बक्स पड़ा हुआ था। ठहरने का कोई स्थान न देखकर नवयुवक बक्से के नजदीक आया और रात्रि वहीं बिताने का निश्चय किया। वह बक्से के अंदर घुस गया और सो गया।

अरुणोदय हुआ और साथ ही आया नवयुवक के हृदय में अजेय विश्वास। विश्वास, विश्वास स्वयं में और विश्वास ईश्वर में। नवयुवक उठा और चल पड़ा उस दिशा में जहाँ उसका अन्तःकरण निर्देशित कर रहा था। वह चलता गया। अंततः थककर वह सड़क के किनारे बैठ गया इस विश्वास के साथ कि ईश्वर उसे सहायता देगा। और वस्तुतः उसे यह सहायता मिली भी। जहाँ वह बैठा था ठीक उसके सामने एक आधुनिक खूबसूरत मकान का दरवाजा खुला और एक राजकीय महिला उसके समीप आयी। नवयुवक से उसने उसकी कठिनाई के बारे में जानना चाहा। नवयुवक ने एक बच्चे के समान भोलेपन के साथ अपनी कठिनाई जाहिर की। महिला उसे अपने घर ले गयी और उसे माँ का प्यार दिया साथ ही वह सब कुछ दिया जो उसके लिए उस परदेश में आवश्यक था।

भद्र महिला श्रीमती जार्ज डबल्यू० हेल थी और नवयुवक, आधुनिक भारत के पैगम्बर स्वामी विवेकानन्द थे।

पहली बार स्वामी विवेकानन्द जब अमेरिका के लिए रवाना हुए तो वे मात्र तीस वर्ष के थे। वे उस विलासितापूर्ण भूमि पर बिना किसी सहायता के खाली हाथ गये। उस विशाल देश में उनका कोई परिचित भी नहीं था। शिकागो में होनेवाले धार्मिक सम्मेलन में उन्हें भाग लेना था किन्तु उन्हें ज्ञात नहीं था कि क्या करना है। सामने असंख्य कठिनाइयाँ थीं तथा सहायता मिलने की क्षीण आशा भी नहीं थी। हर कुछ अनिश्चित था और सामने था गहन अंधकार। किन्तु महान स्वामीजी ने महावीर हनुमान की तरह इस कठिनाई रूपी समुद्र को पार करने और भारत के संदेश को विश्व में पहुँचाने का निश्चय कर लिया था। और उन्होंने इसे किया भी।

वह कौन सी ताकत थी जिसने स्वामीजी को इन कठिनाइयों पर आधिपत्य जमाने तथा विजयश्री और सफलता प्राप्त करने में महान शक्ति प्रदान की?

स्वयं में विश्वास ने स्वामीजी को यह शक्ति प्रदान की। ईश्वर के प्रति विश्वास ने उन्हें विजयश्री दिलायी। बाधाओं ने उनके मार्ग को अवरुद्ध किया, कठिनाइयाँ हतोत्साहित करने के लिए उपस्थित हुईं, विरोध और आलोचना उनको कुचलने के लिए आयी, खिल्ली उड़ायी गयी, किन्तु इन सभी कठिनाइयों और आपत्तियों के बीच भी स्वामी विवेकानन्द हतोत्साहित नहीं हुए। एक क्षण के लिए भी उनका आत्मविश्वास समाप्त नहीं हुआ। ईश्वर के प्रति उनका विश्वास डिगा नहीं।

बाद में पश्चिमी देशों में विजयश्री प्राप्त करने के उपरान्त मातृभूमि को लौटने पर उनका हार्दिक स्वागत हुआ। कुम्भकोणम् में स्वागत के अवसर पर स्वामीजी ने अपनी सफलता का रहस्य बतलाया। उन्होंने कहा, "विश्वास, विश्वास स्वयं में और विश्वास ईश्वर में, यही महानता का रहस्य है।" (क०व० आफ स्वा०वि० खंड ३ पृष्ठ १९०)। जीवन के संघर्ष में आवश्यक सभी शक्तियाँ और बल हमारे अन्तर्गत हैं। महान शक्ति का स्थायी स्रोत हमारे अन्तर्गत है। किन्तु दुर्भाग्यवश हमारे दुष्कर्मों से इसके प्रवाह में रुकावट आ जाती है। आत्मशक्ति में संदेह, आंतरिक शक्ति की अभिव्यक्ति के मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध है। सभी कमजोरियों और दुःखों की जड़ आत्मशक्ति के अविश्वास में है। आत्मशक्ति और महान संभावनाओं में संदेह करना पाप है। जबतक हम अपने हृदय से इस संदेह को दूर नहीं करेंगे हमें कहीं से कोई आंतरिक या बाह्य शक्ति नहीं प्राप्त होगी। यही कारण है कि स्वामीजी ने कहा है, "यदि तुम्हें तैंतीस कोटि अपने पौराणिक देवताओं तथा उन सभी देवताओं में श्रद्धा है जिन्हें विदेशियों ने तुम्हारे सम्मुख बार-बार प्रस्तुत किया है और तब भी अपने आप में श्रद्धा नहीं, तो तुम्हारे लिए

मुक्ति नहीं है। स्वयं में विश्वास रखकर खड़े हो जाओ और दृढ़ बनो, यही मैं चाहता हूँ।" (वही)

स्पष्ट है कि आत्मविश्वास ही वह कठोर चट्टान है जिसपर सफल और सुखी जीवन की इमारत खडी हो सकती है। आत्मविश्वास सफल जीवन की अनिवार्य शर्त्त है। जबतक हममें आत्मविश्वास नहीं होगा, विश्व में हमें कोई सहायता नहीं प्रदान कर सकता। आत्मविश्वास के मार्ग से ईश्वर हमारे अन्तर में प्रवेश करता है। और अगर हममें संदेह आ गया तो हमारे हृदय का द्वार बन्द हो जाएगा और ईश्वर भी बाहर ही रह जाएगा।

किन्तु, इस आत्मसंदेह से छुटकारा कैसे हो? दूसरी जगह स्वामीजी कहते हैं, 'अपनी शक्ति को दृढ़तापूर्वक स्वीकार करो" यही रास्ता है। हम बार-बार स्वीकार करें कि हम अजेय हैं, हमारी शक्ति असीमित है। जितना शीघ्र हम शक्ति को स्वीकार करेंगे उतना ही श्रेयस्कर फल प्राप्त करेंगे और हमारे अन्दर का आत्मसंदेह सदा के लिए दूर हो जाएगा। अतः हमलोग सामने आवें और रात दिन अपनी शक्ति को स्वीकार करें, 'मैं सर्वशक्तिमान हूँ' 'मेरे माध्यम से तथा मुझमें ईश्वर की शक्ति काम कर रही है। मैं अजेय हूँ। मुझमें असीमित शक्ति है।'

*

जीवन का चरम उद्देश्य

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

एक सुसन्तुलित जीवन के लिए उसका उद्देश्य निर्धारित करना आवश्यक है। अधिकांश मानव विद्याध्ययन विवाह, परिवार निर्वाह, एवं सामान्य सांसारिक सुख भोग में ही अपना जीवन यापन कर देते हैं। इन्द्रिय सुख-भोग की आसक्ति में वे पड़े रहते हैं। उनके जीवन का कोई चरम लक्ष्य विशेष नहीं होता। लेकिन चिन्तनशील, संवेदनशील उच्चकोटि के मानव ऐसे जीवन से संतुष्ट नहीं होते, "सर्वहरा मृत्यु ही सभी की अनिवार्य गति है।" यह कटुसत्य उन्हें चैन नहीं लेने देता और वे जीवन का कोई सार्थक अर्थ खोजने के लिए व्यग्र होते हैं। महावीर, बुद्ध, ईसामसीह आदि जैसे मानव जाति के आचार्य इसी कोटि के पुरुष हैं। इन सभी ने मानव जाति के समक्ष स्पष्ट भाषा में जीवन का चरम लक्ष्य प्रस्तुत किया है, जिससे हम अपने जीवन को सार्थक बना सकें। वर्तमान युग में यह कार्य श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द ने किया है।

श्रीरामकृष्ण के अनुसार ईश्वर-दर्शन ही जीवन का चरम उद्देश्य है। जिस प्रकार हम एक दूसरे को देखते, तथा परस्पर वार्तालाप करते हैं, उसी तरह भगवान को भी देखा तथा उनके साथ वार्तालाप किया जा सकता है, और यह करना ही मानव जीवन का उद्देश्य है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है। अन्तःप्रकृति तथा बहिःप्रकृति का नियमन कर इस अन्तर्निहित ब्रह्मत्व को व्यक्त करना ही जीवन का लक्ष्य है। माँ सारदा श्रीरामकृष्ण द्वारा निर्धारित लक्ष्य को स्वीकार करते हुए भी 'निर्वासना' होने पर अधिक बल देती हैं। उनके अनुसार निर्वासना होना जीवन का लक्ष्य है, यदि यह कहा जाय तो गलत नहीं होगा। पुरातन आचार्यों में से भगवान बुद्ध तथा योगाचार्य पंतजलि के उपदेशों का भी इस सन्दर्भ में स्मरण किया जा सकता है। बुद्ध के

अनुसार दुःखनिवृति एवं निर्वाणप्राप्ति जीवन का लक्ष्य है। पंतजलि कहते हैं कि चित्तवृति के निरोध से पुरुष, चैतन्य आत्मा अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है, अतः चित्तवृत्ति-निरोध ही जीवन का उद्देश्य है।

उपर्युक्त महापुरुषों द्वारा कथित जीवनोद्देश्यों में आपाततः विरोधाभास प्रतीत होता है। एक ईश्वर को महत्व देते हैं तो दूसरे दुःखनिवृत्ति को। तीसरे के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति विशेष का स्वरूपानुसन्धान महत्वपूर्ण है, तो चौथा चित्तवृत्ति-निरोध का प्रतिपादन करता है। क्या ये विभिन्न कथन सचमुच विरोधी हैं, या उनमें कोई सामंजस्य है ? इस प्रश्न का उत्तर सैद्धान्तिक एवं बौद्धिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि व्यावहारिक एवं साधना की दृष्टि से भी गुरुत्वपूर्ण है।

वस्तुतः उपर्युक्त कथनों में कोई विरोधाभास नहीं है। एक ही बात को विभिन्न दृष्टिकोणों से एवं भिन्न सन्दर्भों के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यक्त किया गया है। हमारा समस्त ज्ञान ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान के साधन मन पर निर्भर करता है। श्रीरामकृष्ण ज्ञेय विषय को लक्ष्य कर जीवनोद्देश्य निर्धारित करते हुए कहते है, "ईश्वर-दर्शन जीवन का उद्देश्य है।" स्वामी विवेकानन्द का कथन ज्ञाता अर्थात् व्यक्ति मानव से संबद्ध है। यह मानव स्वरूपतः ब्रह्म है। यही अभिव्यक्त करना जीवन का उद्देश्य है। पंतजलि एवं माँ सारदा के कथनों का इंगित है ज्ञान का माध्यम—मन। इस मन को चित्त वृत्तियों से शून्य करना, वासना रहित बनाना—शुद्ध करना ही जीवन का उद्देश्य है। भगवान बुद्ध आत्मा अथवा ईश्वर के स्वरूप के विवाद में न पड़कर स्पष्ट एवं सरल भाषा में दुःखरूप सर्वविदित समस्या का समाधान ही जीवन का लक्ष्य बताते हैं। उनका दृष्टिकोण विशुद्ध रूप से व्यावहारिक है। व्यक्ति विशेष अपनी अभिरुचि के अनुसार इनमें से किसी भी एक लक्ष्य को अपने लिए चुन सकता है।

लेकिन क्या चित्तवृत्ति निरोध करने पर मैं अपने ब्रह्मस्वरूप को अभिव्यक्त कर सकूंगा ? आत्मस्वरूपाभिव्यक्ति एवं ईश्वर-दर्शन में क्या सम्बन्ध है ? दुःखनिवृत्तिरूप निर्वाण का ईश्वर-दर्शन से क्या लेना देना ? यदि ये विभिन्न वक्तव्य एक ही बात कहने के विभिन्न प्रकार ही हों, तो इनमें कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। वस्तुतः बात ऐसी ही है। चित्तवृत्ति का निरोध किये बिना, अथवा निर्वासना हुए बिना कोई भी ईश्वर दर्शन नहीं कर सकता। इसके बिना दुःखनिवृत्ति भी सम्भव नहीं है। अपने ब्रह्मस्वरूप को अभिव्यक्त करना तथा निर्वाण वस्तुतः एक ही हैं। अपने वास्तविक स्वरूप को जाने बिना कोई ईश्वर-दर्शन नहीं कर सकता, और ईश्वर-दर्शन होने पर स्वरूपानुभूति एवं दुःखनिवृत्ति अपने आप हो जाती है। तात्पर्य यह कि ये विभिन्न अवस्थाएँ परस्पर एक दूसरे पर निर्भर हैं तथा विरोधी नहीं, बल्कि परस्पर परिपूरक हैं। इस सत्य का उद्घाटन तो साधक चरम लक्ष्य प्राप्त करने पर ही कर सकता है। लेकिन उस उच्चावस्था तक पहुँचने के पूर्व भी वह अपने साधना-जीवन में ही इसकी पुष्टि आंशिक मात्रा में कर सकता है।

एक विचार प्रवण साधक अन्तर्निहित ब्रह्मत्व की अभिव्यक्ति को जीवन का लक्ष्य मानकर ज्ञान योग के आत्म अनात्म विवेक, अथवा आत्म विश्लेषण के पथ से अग्रसर होगा। प्रारम्भ में उसका देहात्म-बोध प्रबल होगा—अर्थात् वह स्वयं को देह, पिंड समझेगा। इस अवस्था में उसका मन भी चंचल होगा तथा दृश्य जगत् भी उसे सत्य प्रतीत होगा। साधना के फलस्वरूप जब उसमें यह बोध थोड़ी मात्रा में जगेगा कि वह केवल हाड़-मांस का पुतला ही नहीं है, बल्कि उससे पृथक् उसकी एक चैतन्य सत्ता भी है तो उसका मन भी पहले की तुलना में अधिक शान्त हो जायेगा। यही नहीं, उसे ऐसा भान भी होने लगेगा कि बहिर्जगत् इतना सत्य नहीं है जितना वह सोचता था, तथा उसके पीछे एक चैतन्य सत्ता भी विद्यमान है। और अग्रसर होने पर उसे आत्मा का देह-मन से पृथक् अस्तित्व-बोध होने लगेगा तथा जगत् स्वप्नवत् दिखाई देगा। विवेक द्वारा आत्मा के चैतन्य स्वरूप

का प्रत्यक्ष अनुभव होने पर उसे जगत् भी ब्रह्मरूप दिखाई देगा तथा उसका मन पूर्ण रूप से शान्त हो जाएगा।

संभवतः दूसरा राजयोगी साधक धारणा ध्यान की सहायता से चित्त को एकाग्र करता हुआ लक्ष्य की ओर अग्रसर हो। वह पाएगा कि ज्यों-ज्यों वह अपने मन को शान्त करने में, चित्त की वृत्तियों का निरोध करने में सफल हो रहा है, त्यों-त्यों, जगत् भी अधिकाधिक स्वप्न-वत् असत् प्रतीत होने लगा है, और वह स्वयं आत्मा है, यह भान भी उसे हो रहा है।

भगवान को प्रेम करने वाला, उनके नाम का गुण गान करने वाला भक्तियोगी साधक पाएगा कि जिस मात्रा में वह भगवान की ओर बढ़ रहा है, उसी मात्रा में उसका मन भी शान्त हो रहा है, तथा उसका देहाध्यास भी कम होता जा रहा है और उपर्युक्त तीनों प्रकार के साधक यह अनुभव करेंगे कि प्रगति के साथ ही साथ उनकी दुःख निवृत्ति भी हो रही है। साधक-जीवन में यह परस्पर अनुभूतियों का सम्बन्ध कोई भी साधक कुछ ही वर्षों की साधना के द्वारा स्वयं अनुभव कर सकता है।

चरम लक्ष्य के एकत्व तथा अनुभूतियों के परस्पर सम्बन्ध का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यावहारिक निष्कर्ष निकलता है। यदि भक्ति योग से भी मेरी चित्तवृत्तियों का निरोध होगा, तो मैं धारणा ध्यान के साथ ही साथ भगवत् भक्ति भी क्यों न करूँ? अथवा यदि मैंने भगवत् भक्ति को अपनी साधना में प्राथमिकता दी है, तो भी अपने विचार करने की क्षमता का उपयोग कर आत्म स्वरूप का अन्वेषण भी क्यों न करूँ—वह भी मेरी भक्ति को पुष्ट ही करेगा। इसी तरह ज्ञान योगी साधक आत्म अनात्म का विचार करते हुए यदि चित्तवृत्ति-निरोध की भी साधना करे एवं भगवान के प्रति प्रेम भी करे, तो वह द्रुततर गति से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होगा। यह ठीक है कि चरम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ज्ञान, योग, कर्म एवं भक्ति, इनमें से किसी भी एक का अवलम्बन किया जा सकता है, लेकिन इन चारों का समन्वय सर्व-श्रेष्ठ है क्योंकि इससे हमारी बौद्धिक, भावनात्मक, क्रियात्मक, सभी क्षमताओं का पूर्ण उपयोग होता है। ★

'श्री रामकृष्ण वचनामृत' का जादू

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

[श्री रामकृष्ण का लीलामय जीवन महत्तम घटनाओं से भरा था। फरवरी १८८२ से २४ अप्रैल, १८८६ (श्रीरामकृष्ण के लीला संवरण के कुछ ही महीने पूर्व तक) उनके अमृतोपम वचनों को श्री 'म' प्रायः नित्य अपनी डायरी में लिपिबद्ध किया करते थे। वस्तुतः 'श्रीरामकृष्ण वचनामृत' का यही मूल लेखन-काल है। उसके लेखन के सौ वर्ष २४ अप्रैल १९८६ को पूरे हो गये। इस शताब्दी वर्ष में इस ग्रंथ की महिमा एवं गरिमा पर बड़ा ही रोचक प्रकाश डाला है रामकृष्ण मिशन, राँची में कार्यरत स्वामी निखिलेश्वरानन्दजी महाराज ने। यह लेख पाठकों के लिए विशेष लाभप्रद एवं प्रेरक सिद्ध होगा, यह आशा है।—सं०]

श्री महेन्द्रनाथ गुप्त ('म') द्वारा मूल बंगला में रचित तथा श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' द्वारा हिन्दी में अनूदित यह पुस्तक आज केवल हिन्दी जगत् में ही नहीं, पूरे संसार में जादू-सा प्रभाव डाल रही है। देश की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं—हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती तमिल तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ आदि तथा विदेशी कई भाषाओं—अंग्रेजी, फ्रेन्च, जर्मन, जापानी, स्पेनिश आदि में इस पुस्तक की लाखों प्रतियाँ अब तक बिक चुकी हैं।

तीन वर्षों पूर्व जब मूल बंगला ग्रन्थ 'श्रीश्री रामकृष्ण कथामृत' का प्रकाशनाधिकार लेखक के मरने के पचास वर्षों बाद, उनके उत्तराधिकारियों के पास से जाता रहा, तब इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने के लिए १६ और प्रकाशक प्रतियोगिता में कूद पड़े, और इस ग्रन्थ की अप्रत्याशित बिक्री ने प्रकाशन जगत् में तहलका मचा दिया। उस समय दक्षिण भारत से प्रकाशित एक अंग्रेजी पत्रिका ने एक रोचक लेख छापा था, जिसका शीर्षक था—'Ramakrishna outsells Marx' 'बिक्री में श्रीरामकृष्ण मार्क्स से बढ़कर!' उक्त लेख के अनुसार पहली जनवरी से चौदह फरवरी १९८३ तक के केवल ४५ दिनों में इस पुस्तक की ढाई लाख प्रतियाँ, जिनका मूल्य लगभग ४५ लाख रुपये होता है, बिक गयीं जो कि "पूरे पश्चिम बंगाल की मार्क्सवादी सभी पुस्तकों की पिछले ३ वर्षों की बिक्री से भी अधिक थी।" पश्चिम बंगाल के मार्क्सवादी साहित्य के सबसे बड़े विक्रेता तथा प्रकाशक 'नेशनल बुक एजेन्सी' के अनुसार मार्क्स तथा एन्जेल्स की बारह पुस्तकों की केवल २००० सेट (प्रति सेट मूल्य केवल ३६ रु० है) प्रतिवर्ष बिकती है। इस लेख के अनुसार मार्क्सवादी लोग, एक धार्मिक ग्रन्थ की इस अप्रत्याशित बिक्री को देखकर दाँतों तले ऊँगली दबा रहे हैं, और बंगाल की राजनीति तथा संस्कृति पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा, इस पर चिन्तित हो रहे हैं। इस लेख के अन्त में लेखक ने एक रोचक टिप्पणी की है—"अतः लाल झंडों तले धार्मिक पुस्तकें अपना प्रभाव क्यों डाल रही हैं यह रहस्य बना हुआ है...शायद बंगाली जनता ज्योति बसु को 'रायटर्स भवन' में तो शासन करने देना चाहती है, किन्तु अपने हृदय में नहीं। वहाँ तो लगता है उन्हें चाहिए—राधा, कृष्ण तथा रामकृष्ण परमहंस।[1]

अंग्रेजी में जब यह पुस्तक (The Gospel of Sri Ramakrishna) के नाम से प्रकाशित हुई तब अमेरिका

१. 'Th wek': मार्च १३—१९, १९८३

में इतनी प्रसिद्ध हुई कि 'न्यूयॉर्क हेराल्ड ट्रिब्यून' पत्रिका ने अपने सितम्बर १९४९ के अंक में लिखा —"पिछले पच्चीस वर्षों की सर्वोत्तम दार्शनिक पुस्तक थी —"The Gospel of Sri Ramakrishna'।"[2] सन् १९४८ में अमेरिकन लायब्रेरी एसोसियेशन ने इसे उस वर्ष की पचास सर्वोत्तम पुस्तकों में अग्रणी माना। रॉबर्ट ओबेलेक द्वारा संपादित 'द पोर्टेबुल वर्ल्ड बाईबुल' (पेंगुइन क्लासिक) में इस पुस्तक के लिए बारह पृष्ठ दिये गये हैं।

इस 'वचनामृत' का जादू संसार भर के विद्वानों, मनीषियों तथा विचारकों पर पड़ा है। प्रख्यात इतिहासकार ऑल्डस हक्सले ने अंग्रेजी पुस्तक 'द गॉस्पेल ऑफ श्री रामकृष्ण' की भूमिका में लिखा है—"अपनी योग्यता और परिस्थितियों का समुचित उपयोग कर श्री 'म' ने एक ऐसे ग्रन्थ की रचना की, जो मेरी जानकारी में सन्त-चरितों में बेजोड़ है। किसी और सन्त को ऐसा सुयोग्य एवं अश्रान्त बॉस्वेल नहीं मिला।"

प्रख्यात फ्रेन्च मनीषी रोमाँ रोलाँ ने इस ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। स्वामी परमहंस योगानन्द ने अपनी आत्म-कथा (Autobiography of a Yogi), में 'वचनामृत' के लेखक के पास से जो प्रेरणा प्राप्त की उसका विशद वर्णन किया है। श्री पॉल ब्रुंटन ने लिखा है कि मास्टर महाशय (श्री 'म') के कारण ही वे बौद्धिक संशयवाद से ऊपर उठकर धर्म में श्रद्धा का भाव प्राप्त कर सके थे।[3]

पुरी के पूर्व शंकराचार्य (जिन्होंने पाँच विषयों में एम० ए० किया था तथा वैदिक मैथेमेटिक्स पुस्तक लिखी थी), सन् —१९४५ में रामकृष्ण मठ, मद्रास में पधारे थे, तब उन्होंने कहा था—"यह इस शताब्दी का सर्वोत्तम ग्रन्थ है, आधुनिक युग का भागवत है। मैं इस ग्रन्थ को सर्वदा अपने बिछावन के पास रखता हूँ और इसके कुछ पृष्ठों को पढ़े बिना सोता नहीं।"[4]

श्री रामकृष्ण देव के अन्तरंग पार्षद् स्वामी विज्ञानानन्द महाराज ने एकबार मास्टर महाशय को कहा था—"पूछताछ करने पर मैंने पता लगाया है कि ८०% से अधिक संन्यासियों ने 'वचनामृत' को पढ़कर संन्यास-जीवन अंगीकार किया है।"[5] श्री रामकृष्ण देव के अन्य पार्षदों—स्वामी रामकृष्णानन्दजी, स्वामी शिवानन्दजी, स्वामी प्रेमानन्दजी आदि ने भी इस ग्रन्थ के विलक्षण प्रभाव की प्रशंसा की है। एकबार स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने एक भक्त से कहा—"मैं तुम्हें एक वाक्य में ब्रह्मज्ञान दूँगा।" भक्त बड़ी आतुरता से इस वाक्य को सुनने के लिए उनके निकट आया। महाराज ने धीरे से कहा—"प्रतिदिन 'वचनामृत' पढ़ो।"

'वचनामृत' के इस अमृत ने असंख्य लोगों को 'अमरत्व' की ओर अग्रसर किया है; जीवन-मृत्यु के चक्र से उबारा है, इतना ही नहीं, मृत्यु के पंजों से भी बचाया है।

श्री रामकृष्ण देव के एक गृही भक्त थे श्री पूर्णचन्द्र घोष, जिन्हें श्री रामकृष्णदेव ईश्वर-कोटि कहा करते थे। एक दिन उन्होंने सांसारिक झमेलों से तंग आकर आत्म-हत्या करने का निश्चय किया। उसी दिन स्नान करके ठाकुर घर में जाकर श्रीरामकृष्णदेव को प्रणाम किया। उन्होंने सोचा—" 'वचनामृत' से कुछ पढ़ते-पढ़ते, भगवान् के वचनों के अमृत का पान करते-करते इस संसार से विदा लूँगा।" उन्होंने जैसे ही 'वचनामृत' पुस्तक खोली, उनकी नजर इस वाक्य पर पड़ी —"पूर्ण है बालक भक्त। ठाकुर

---

२. प्रबुद्ध भारत : दिसम्बर, १९४८, पृष्ठ : ४९५

३. A Search in Secret India'—Paul Brunton, Reder & co. P P.181

४. The Kathamrita Centenary Memorial Volume, P P 108

५. 'M—The Apostl and the Evangelist' Part I—P-37

(श्री रामकृष्ण) पूर्ण के मंगल के लिए सदा चिन्तित हैं।" मन ही मन वे चिल्ला उठे—"यह क्या ? भगवान-स्वयं मेरे कल्याण की चिन्ता कर रहे हैं और मैं आत्मा-हत्या करूँगा ? असंभव !" उनका जीवन इस प्रकार 'वचनामृत, ने बचा लिया।

केरल के किसी संभ्रांत परिवार के एक युवक ने सन् १९४० में स्वराज्य आन्दोलन में भाग लिया था। कुछ वर्षों बाद उसने कम्युनिस्ट पार्टी में योगदान दिया और अपना सर्वस्व पार्टी के लिए दे डाला। देर से उसने विवाह किया, किन्तु गरीबी के कारण पत्नी सहित चार बच्चों का जीवन-निर्वाह करना उसके लिए क्रमशः दुरुह होता गया। पन्द्रह वर्षों तक कम्युनिस्ट पार्टी की सेवा करने पर भी केरल में जब कम्युनिस्ट सरकार बनी तो भी उसके लिए पार्टी ने कुछ नहीं किया। मित्रों की ओर से भी उसे निराशा ही मिली। इस गरीबी की समस्या के साथ जब परिवार की अन्य समस्याएँ आ जुड़ीं तो उसके लिए जीना और भी दूभर हो गया। वह एकदिन आत्म-हत्या के इरादे से निकल पड़ा। संयोग से वह त्रिवेन्द्रम के रामकृष्ण आश्रम में जा पहुँचा, जहाँ उसकी भेंट एक सन्यासी से हुई जो उनके पूर्वाश्रम के घनिष्ठ सम्बन्धी थे। दीर्घ पन्द्रह वर्षों के बाद इस प्रकार उनसे मिलकर वह द्रवित हो गया और अपने मन की व्यथा उन्हें कह सुनायी। बात-ही-बात में उसने यह भी बता दिया कि उसने आत्म-हत्या का इरादा पक्का कर लिया है। उस संन्यासी ने उन्हें ढाढ़स बँधाते हुए शांत चित्त से इस पर सोचने के लिए कहा और 'वचनामृत' (Gospel) पढ़ने का सुझाव दिया। अनिच्छा होते हुए भी उसने इस सुझाव का पालन किया। छः माह बाद उसने सन्यासी को लिखा कि इस पुस्तक से उसे अपरिमित शांति मिली है और आत्म-हत्या के घृणित कार्य से वह बच गया है।

त्रिवेन्द्रम के इन्हीं संन्यासी के पास सन् १९६० में एकदिन एन० सी० सी० के एक कर्नल साहब आये। वे भगवती के उपासक थे तथा आश्रम में आया जाया करते थे। उन्होंने उक्त संन्यासी को बताया कि उनके विभाग का एक मेजर अत्यन्त मानसिक तनाव में रहता है तथा प्रायः अपने आपको गोली मार देने की बात करता रहता है। संभवतः उसका वैवाहिक जीवन कष्टमय था। कर्नल साहब ने प्रस्ताव रखा कि एकबार वे उस मेजर को आश्रम में ले आयेंगे ताकि आत्म-हत्या के घृणित कृत्य से विरक्त होने के लिए वे उसे समझा सकें। संन्यासी ने कहा "देखिए, मुझे नहीं लगता, बातचीत का कोई असर होगा, क्योंकि हम एक दूसरे को पहचानते नहीं हैं। उसे एक बार 'वचनामृत' (Gospeel) पढ़ने को कहिए, बाद में उसे जो करना हो, करे। उसे कहिएगा कि उसके मरने से पृथ्वी प्रदक्षिणा करना वन्द नहीं करेगी किन्तु आत्म-हत्या करना कायरता तथा महापाप है।"

कर्नल साहब ने कुछ माह बाद उनके पास आकर कहा—"स्वामीजी, 'वचनामृत' ने मेरे मेजर को बचा लिया है। इस ग्रन्थ को पढ़ने के बाद उस मेजर ने मुझसे कहा—'यदि सारा संसार मेरे विरुद्ध हो जाय, तब भी मैं आत्म-हत्या का महापाप नहीं करूँगा।"

वास्तव में 'वचनामृत' की सृष्टि भी इसी प्रकार की घटना से हुई। वचनामृत के लेखक श्री महेन्द्रनाथ गुप्त (श्री 'म') भी आत्म-हत्या के इरादे से ही एकदिन घर से निकल पड़े थे। संयोगवश बड़ी दीदी के घर, वराहनगर में रात्रियापन कर दूसरे दिन रविवार को घूमते-घूमते दक्षिणेश्वर मन्दिर जा पहुँचे थे। वहाँ श्रीरामकृष्णदेव का दर्शन कर उन्हें प्रतीत हुआ मानो साक्षात् शुकदेव भागवत प्रसंग कह रहे हैं। श्रीरामकृष्णदेव के अमृतमय उपदेशों ने उनके दग्ध चित में शांति का सिंचन किया। उनका जीवन ही परिवर्तित हो गया। उस 'वचनामृत' का पान कर उन्होंने न केवल अपना जीवन बचाया, बल्कि, 'वचनामृत' के माध्यम से और भी असंख्य लोगों को नया जीवन प्रदान किया।

'वचनामृत' के इस जादू की पूर्वघोषणा स्वामी विवेकानन्द ने बहुत पहले ही कर दी थी। सर्वप्रथम इस पुस्तक के कुछ अंश जब अंग्रेजी में प्रकाशित हुए, तब इसे पढ़कर स्वामी विवेकानन्द ने श्री 'म' को आँटपुर से दि. ७ 'फरवरी' १८८९ को पत्र दिया था—"मेरा

हृदय खुशी से उछल रहा है....आश्चर्य है कि, जिस उपदेशामृत के द्वारा सारी पृथ्वी में शान्ति का वर्षण होनेवाला है उससे ओतप्रोत एक व्यक्ति को पाकर भी, मैं पागल नहीं हो जाता।"

स्वाभाविक ही मन में प्रश्न उठता है—क्या कारण है, 'वचनामृत' के इस जादू का ? इसके कई कारण दिये जा सकते हैं—

१. यह ग्रन्थ अवतारवरिष्ठ श्री रामकृष्णदेव के उन अमृतमय उपदेशों का संग्रह है, जो तप्तजीवों को शांति प्रदान करते हैं, चित्त के कल्मष को दूर करते हैं, सुमंगलकारी तथा सुमधुर हैं, तथा अनन्त ज्ञान के भंडार हैं। श्री 'म' ने स्वयं भी इस ग्रन्थ के प्रारंभ में श्रीमद्भागवत् के इस श्लोक को उद्धृत किया है—

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः॥

अर्थात् आपका वचनामृत संसार के ताप से तप्त, मृत-प्रायः दग्ध मनुष्यों के लिए जलस्वरूप-जीवनस्वरूप है। ज्ञानी जनों ने इस कथामृत की प्रशंसा की है। यह वचनामृत हमारे कल्मषों-पापों को दूर कर देता है। इसके श्रवण मात्र से ही कल्याण होता है। सौन्दर्य पूर्ण इस कथामृत में अपार आकर्षण है। पुण्यवान लोगों की इस वचनामृत में स्वभाविक रुचि होती है।

२. ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ अभूतपूर्व है, क्योंकि किसी भी अवतार या सन्त के उपदेशों का इतना सुविस्तृत तथा सुप्रामाणिक संग्रह कभी नहीं किया गया। श्री 'म' ने स्वयं श्रीरामकृष्ण देव के चरितामृत के बारे में प्राप्त सामग्री को तीन भागों में विभक्त किया है—पहली, प्रत्यक्ष तथा सुनने के दिन ही लिपिबद्ध; दूसरी, प्रत्यक्ष किन्तु बाद में लिपिबद्ध तथा तीसरी, परोक्ष तथा बहुत बाद में लिपिबद्ध। 'वचनामृत' प्रथम प्रकार की सामग्री से तैयार हुआ है। श्री रामकृष्ण देव के अपने शिष्यगण, भक्तगण तथा दर्शनार्थियों से जो वार्तालाप होते थे, उन्हें श्री 'म' ने स्वयं सुनने के बाद दैनन्दिनी के रूप में लिपिबद्ध कर लिया था। बाद में वही ग्रन्थाकार रूप में प्रकाशित हुआ।

३. यह केवल सब शास्त्रों का सार ही नहीं, सब शास्त्रों को समझाने का श्रेष्ठ अस्त्र है एवं आधुनिक तथा भावी युगों का सर्वश्रेष्ठ शास्त्र है।

४. इस ग्रन्थ को समझने के लिए पाठक में बुद्धिमत्ता या अन्य विशेष योग्यता की अपेक्षा नहीं है, क्योंकि इसकी शैली अत्यंत सुगम तथा सरल है।

५. विभिन्न भावों, दृश्यों तथा व्यक्तियों का सुन्दर सम्मिश्रण तथा वर्णन इस ग्रन्थ में हुआ है। सन् १८८२ से १८८६ तक इन चार वर्षों के वर्णन में श्री 'म' ने श्रीराम-कृष्ण देव के १७८ वार्तालापों का वर्णन किया है जिनमें ९१ वार्तालाप दक्षिणेश्वर के मंदिर में हुए थे तथा शेष श्यामपुकुर, काशीपुर एवं कलकत्ता के अन्य स्थानों पर। लगभग २५० व्यक्तियों के बारे में इस ग्रन्थ में उल्लेख है। इस प्रकार इस ग्रन्थ का आयाम अति विस्तृत है।

६. विभिन्न दृश्यों तथा वार्तालापों का इतना सुन्दर वर्णन तथा सजीव चित्रण इस ग्रन्थ में हुआ है कि आज भी यह काल का अतिक्रमण कर पाठकों के समक्ष उन दृश्यों तथा वार्तालापों को उपस्थित कर देता है। श्री रामकृष्ण देव के अन्तरंग पार्षद् स्वामी रामकृष्णानन्द जी ने श्री'म' को अपने एक पत्र (दि० १०-४-१९०६) में लिखा था—"दृश्य का वर्णन इतना जीवन्त है कि वह सजीव हो उठा है। आप काल की विनाशकारी शक्ति का भी अतिक्रमण कर सके हैं।" श्री 'म' ने स्वयं एकबार कहा था—"एक-एक दृश्य पर मैंने हजार बार चिन्तन किया है। अतः श्री रामकृष्ण देव की कृपा से चालीस वर्षों पूर्व की उनकी दिव्य लीला, लिखते समय फिर से मानो मेरी आँखों के सामने खेली गयी और काल का व्यवधान चला गया। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) की कहानी उनकी उपस्थिति में ही लिखी गयी है।"[६]

६. Sri Ramakrishna Kathamrita Centnary Memorial, Volum, P P 144

७. लेखक श्री महेन्द्रनाथ गुप्त ने अपने नाम के लिए इस ग्रन्थ में 'म', 'मणिमोहन', 'भक्त' इत्यादि छद्मनामों का प्रयोग कर उसे गुप्त रखा है। इतना ही नहीं, अपने व्यक्तित्व को भी उन्होंने इसमें गुप्त रखा है। स्वामी विवेकानन्द ने देहरादून से लेखक को एक पत्र (दि० २४ नवम्बर, १८९७) में लिखा था—"किसी महान-आचार्य का जीवन-चरित्र लेखक के मनोभावों की छाप पड़े बिना जनता के सामने कभी नहीं आया, पर आप वैसा करके दिखा रहे हैं।

"...सुकराती-वार्तालाप में प्लेटो ही प्लेटो की छाप है, परन्तु आप स्वयं अपनी पुस्तिका में अदृश्य ही हैं। उसका नाटकीय पहलू परम सुन्दर है। यहाँ और पश्चिम में दोनों जगह लोग इसे बहुत पसन्द करते हैं"।[7]

८. विश्व के सभी प्रकार के लोगों के लिए, सभी धर्मों के अनुयायियों, तथा सभी स्तर के लोगों के लिए इसमें हृदयग्राही सामग्री है। इस प्रकार यह ग्रन्थ सार्वभौमिक है।

९. इस ग्रन्थ में चिरन्तन आध्यात्मिक सत्यों की चर्चा है, इस प्रकार यह शाश्वत भी है।

उपर्युक्त कारणों को छोड़कर, श्री माँ सारदा देवी का इस ग्रन्थ के लिए आशीर्वाद महत्त्वपूर्ण है। श्री 'माँ' ने श्री 'म' को पत्र में लिखा था—"बेटा, श्री रामकृष्ण देव के निकट तुमने जो बातें सुनी थीं, वे ही बातें सत्य हैं। इस विषय में तुम्हें कोई भय नहीं। किसी समय उन्होंने ही तुम्हारे निकट इन बातों को रख छोड़ा था। अब आवश्यकतानुसार वे ही उन्हें प्रकट करा रहे हैं। जान रखो कि इन बातों को व्यक्त किये बिना लोगों का चैतन्य जागृत नहीं होगा। तुम्हारे पास उनकी जो बातें संचित हैं वे सभी सत्य हैं। एक दिन तुम्हारे मुँह से उन्हें सुनकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो वे स्वयं ही ये सब बातें कर रहे हैं।" २ अप्रैल १९०५ को श्री 'माँ' ने श्री 'म' की पत्नी निकुंजदेवी को कहा था—"मैं आशीर्वाद करती हूँ कि इस ग्रन्थ का प्रचार अधिक से अधिक हो ताकि सभी लोग श्री रामकृष्ण देव के बारे में जान सकें।"

सच कहा जाय तो यह जादू है—स्वयं श्रीरामकृष्णदेव का। उन्होंने स्वयं ही श्री 'म' को इस कार्य के लिए चुना, अपने उपदेशों को लिपिबद्ध करने का आदेश दिया, इस बारे में मूल्यवान सुझाव दिये और समय-समय पर श्री 'म' से पूछते रहे—बताओ, उस दिन मैंने क्या कहा था? एवं श्री 'म' के कथन में त्रुटि रहने पर, आवश्यकतानुसार सुधार भी किया। इस प्रकार इस ग्रन्थ का संपादन भी मानो श्रीरामकृष्णदेव ने स्वयं ही किया है। श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरंग शिष्य स्वामी शिवानन्दजी (महापुरुष महाराज) ने भी एक बार श्रीरामकृष्णदेव को बिना कहे, उनके वचनों को लिपिबद्ध करना प्रारंभ किया। किन्तु, एक दिन श्रीरामकृष्ण देव ने इस बात को ताड़कर उन्हें कहा—"तुमलोगों को यह सब करने की आवश्यकता नहीं है, उसके लिए अलग व्यक्ति निर्दिष्ट है। इस प्रकार श्री रामकृष्णदेव ने स्वयं ग्रन्थकर को चिह्नित कर रखा था।

श्री माँ तथा स्वामी विवेकानन्द के आशीर्वाद से प्रेरणा प्राप्त कर श्री 'म' ने 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' (बंगला) ग्रन्थ लिखना प्रारंभ किया था। ११ मार्च १९०२ को इसका पहला भाग प्रकाशित हुआ। कई लोगों ने इसकी प्रशंसा की तथा कई लोगों ने कटु आलोचना। श्री 'म' निराश हो सोचने लगे, आगे के चार खण्ड प्रकाशित करें या नहीं। उस समय श्रीरामकृष्णदेव ने उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर कहा (दि. १४ अक्टूबर १९०२)—"इतनी चिन्ता क्यों करते हो? मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ।" अब श्रीरामकृष्णदेव से प्रेरणा प्राप्त कर दुगुने उत्साह से इस ग्रन्थ लेखन के कार्य में श्री 'म' जुट गये।

---

७. पत्रावली (चतुर्थ संस्करण) रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृष्ठ सं० १०२

श्री 'म' भी अपने को श्रीरामकृष्णदेव का यंत्र ही मानते थे। इसी विश्वास के बूते पर वे कहते— "वचनामृत क्या मैंने लिखा है? श्रीरामकृष्णदेव ने स्वयं अपना कार्य किया है। मेरी बुद्धि तथा इच्छाशक्ति के रूप में उन्होंने ही मुझसे यह लिखवाया है।[8]"

अपने जीवन के अंतिम चरण में भी श्री 'म' ने एक प्रशंसक को कहा था—"श्री रामकृष्ण ही सबकुछ हैं। जब तक विद्युत रहती है, तब तक ट्राम चलती है, बत्ती जलती है, पंखे चलते हैं, इससे विच्छेद होते ही सबकुछ बन्द हो जाता है। अब मैं स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ कि वे ही मुझे, हाथ पकड़कर चला रहे हैं और मुझे विश्वास है, मेरे जीवन की अंतिम यात्रा में भी मुझे वे ले चलेंगे।'[9]

सचमुच, ४ जून, १९३२ को सुवह ६।। बजे श्रीरामकृष्ण-देव का नाम लेते-लेते उनके पादपद्मों में वे लीन हो गये। उसके पूर्व दिन, फलहारिणी कालीपूजा के दिन, रात को ९ बजे 'कथामृत' (बंगला) के पंचम भाग का अंतिम प्रूफ उन्होंने देखा था।

जादूगर ने कार्य समाप्त होते ही अपने यंत्र को संसार से वापस ले लिया किन्तु रख छोड़ा—सदैव के लिए इस संसार में—'वचनामृत' का जादू।

८. उद्वोधन नं ६७ क्रम सं. ८, पृष्ठ : ४३४
९ उद्बोधन नं ६५ क्रम सं. ६५, पृष्ठ : ३१६

□

(पृष्ठ २५ का शेषांश)

पश्चात् वे नीचे उतर आये एवं कहा—यह स्वामीजी वे नहीं हैं जिनके दर्शन के लिए वे यहां आयें थे। तत्पश्चात् उनका ध्यान दूसरे एक भवन के प्रति आकृष्ट किया गया—मुख्य मन्दिर—जहाँ श्री सारदा देवी तथा स्वामी विवेकानन्द के साथ श्रीरामकृष्णदेव की फोटो थी और जिनकी अर्चना की जाती थी। जव आगन्तुक ने इस मन्दिर के बारे में पूछा और जव उन्हें वताया गया कि यह मन्दिर स्वामी विवेकानन्द के गुरु के नाम से समर्पित है, जहाँ नित्य प्रति बहुत संख्या में दर्शक आते हैं एवं अपनी श्रद्धा-भक्ति अर्पित करते हैं। तव यह सुनकर कैपटेन जॉन मन्दिर की ओर वढ़े एवं जिस क्षण उन्होंने श्रीरामकृष्ण देव की प्रतिमा को देखा, वे बहुत उत्तेजित दिखाई पड़े और कहा "इसी मूर्ति को मैंने देखा था जव मैं ईसा मसीह की प्रार्थना कर रहा था। मैं ईसाई हूँ, किन्तु यह मूर्ति ईसा मसीह के स्थान पर मैंने क्यों देखी, मैं नहीं जानता। उस समय से मैं बेलुड़ मठ आकर उनके दर्शन करने के लिए एक आन्तरिक बाध्यता का अनुभव कर रहा था।" जब वे अपने अनुभवों का वर्णन दोनों संन्यासियों से कर रहे थे तब उनके चेहरे पर प्रसन्नता की झलक दिखायी पड़ रही थी—मानो उनके जीवन का एक महान उद्देश्य पूरा हो गया। इसके बाद वे चले गये।

इस घटना के आध्यात्मिक तात्पर्य को एक वैष्णव भक्त-कवि ने दो पंक्तियों में यथार्थरूप में व्यक्त किया है।

"अभी* भी भगवान दैवी लीलाओं को सम्पादित करते हैं किन्तु कोई-कोई भाग्यवान व्यक्ति उन्हें देख पाता है" कैप्टेन जान ऐसे ही एक भाग्यशाली व्यक्ति थे।

*"अदयपियो सेई लीला करे गोरा राय
कोनो कोनो भाग्यवाने देखिवारे पाय।"
कृष्णदास कविराज—"चैतन्य चरितामृत"

दृष्टि-दोष

—श्री सुरेश कुमार प्रशांत

प्रेम के दीपक में विश्वास का स्नेह डाल, अनासक्ति की थाल में सजाया,
अश्रु-पूरित नेत्रों से राह देखी, मधुर भावों का बन्दनवार बनाया,
पर ओ अनन्त रमणीय ! तुम नहीं आये !!
आँख मलते भोर में उठा, तो लगा—
आधी रात को पुरवैया हवा का शीतल झोंका बन,
मुझे जगाने वाले शायद तुम्हीं थे !
सुबह की कुनकुनी, टटकी धूप में आसमान से उतरती, नृत्य करती ऊर्जा में भी, निस्संदेह तुम्हीं थे !
ओ प्रथम पुरुष !!!
वर्षा की टिपिर-टिपिर में तुम्हीं ध्वनित हुए थे,
पक्षियों के स्वच्छंद कलरव के मिस तुम्हीं अपना माधुर्य लुटा रहे थे,
फूलों के चटखने में तुम्ही झाक रहे थे,
सप्तवर्णी सुरधनु तुम्हारा ही शृंगार था, और—
दुधिया चान्दनी बनकर मुझे सहलाने वाले भी निस्संदेह तुम्हीं थे !!
ओ विराट् पुरुष !!!
गेहूँ के अंकुरों में अवश्य तुम्ही अवतरित हो रहे थे,
झूमते-इठलाते बाजरे के पौधों में तुम्हारा ही संकेत था,
कोयला काट रही मजूरिनों के ललाट पर चुहचुहा आये स्वेद-कणों में,
चमक तुम्हारी थी, तुम्हारी थी, और—
विकराल इंजन के काले धुएँ में आसमान को समेटते से,—
तुम्हीं लगे थे, निस्संदेह वहाँ तुम्हीं थे !!!
ओ विश्व-पुरुष !!!
शोषितों के गूँगे कंठ की करुण चीख में आरती बनकर,
तुम्हीं तो गूँजे थे..... चतुर्दिक !
खेत जोतते किसान के अटपटे बिरहा में—
तुम्हारी ही स्तुति लयबद्ध हुई थी, और—
नये कवि की तुतलाहट में तुम्हीं महाकाव्य हो गये थे !!
ओ चिरन्तन !!!
ज्ञान, इच्छा और कर्म का पर्याय बन तुम रहस्यमय ढंग से आते रहे,
जीवन के गहन नैराश्य में भी,
अपने विराट् अस्तित्व का सदा आभास देते रहे,
तीव्र आलोक का ऐश्वर्य लुटाते रहे, मेरी प्रतीक्षा में सदा खड़े रहे,
पर मैं ही नहीं पहचान सका तुम्हें... ..मैं ही नहीं !!!

*

स्वामी विज्ञानानन्द

—डा० ओंकार सक्सेना
जयपुर (राजस्थान)

(लेखक की पुस्तक 'श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द प्रसंग' से साभार—सं०)

रामकृष्ण मठ एवं मिशन के चौथे अध्यक्ष (१९३७ ३८), स्वामी विज्ञानानन्द (हरिप्रसन्न चट्टोपाध्याय) एक प्रतिभाशाली इन्जीनियर थे। इनका जन्म इटावा (१८६८), शिक्षा बेलघरिया (स्कूल), कलकत्ता (एफ०ए०), पटना (बी० ए०) तथा पूना (बी० ई०) में हुई थी। वे डील डौल से विशालकाय एवं बलिष्ठ, मन के गूढ़-गंभीर और अमेघ, मेधावी, सत्यवादी, आस्तिक एवं देशभक्त तथा आध्यात्मिकता के सर्वोच्च सोपान पर आरूढ़ व्यक्तित्व थे। श्रीरामकृष्ण देव के समीप तो वे बचपन में ही आ गये थे, किन्तु शिक्षा पूरी होने के बाद गाजीपुर में डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर के पद पर प्रतिष्ठा अर्जित करके, अपनी विधवा माता की स्थाई व्यवस्था तथा लघु भ्राता की शिक्षा सम्पूर्ण होने के पश्चात् सन् १८९६ में श्रीरामकृष्ण संघ में सम्मिलित हुए थे।

प्रारम्भिक काल में दक्षिणेश्वर में एक दिन भक्तों के चले जाने से जब वे अकेले रह गये तब श्रीरामकृष्ण देव ने उनसे कहा, "तू कुश्ती लड़ सकता है, मेरे साथ लड़ सकेगा? देखूँ तो, एक हाथ लड़ तो ले!" और इतना कहकर वे खड़े हो गये। हरिप्रसन्न सोचने लगे, "भला यह कैसा साधु देखने के लिए आया हूँ, ये तो कुश्ती लड़ना चाहते हैं।" और फिर स्वाभाविकता से बोले, "हाँ, लड़ना जानता हूँ।" इस पर श्रीरामकृष्ण देव पहलवानों की तरह ताल ठोंक कर आगे बढ़े और हरिप्रसन्न को ढकेलने लगे जिसका उन्होंने प्रतिरोध किया और शीघ्र ही ठाकुर को ढकेलते हुए दीवार से भिड़ा दिया किन्तु आश्चर्य! "उन्हें ऐसा लगने लगा मानो कोई अलौकिक शक्ति ठाकुर के शरीर से उनके शरीर में प्रवेश कर रही है। उन्हें रोमांच होने लगा। वे अनिर्वचनीय आनन्द से निढ़ाल होकर पराजित हो गये और उनके कानों में सुदूरवर्ती मधुरवाणी आ रही थी, 'क्यों, हरा तो दिया'।" इसके बाद उन्होंने देखा कि ठाकुर अपनी चौकी पर जाकर बैठ गये हैं किन्तु वे अब भी उस अनुपम आनन्द से आत्मविभोर हुए जा रहे हैं। घर पर जब उनकी माँ को यह ज्ञात हुआ कि वे कहाँ गये थे तब उन्होंने श्रम-काया—उस पागल के यहाँ गये थे, जिसने साढ़े तीन सौ लड़कों का दिमाग बिगाड़ दिया है।" अपनी माँ की इस बात का उल्लेख करके स्वामी विज्ञानानन्द विनोद से कहते थे, "यथार्थ में ही दिमाग बिगड़ा हुआ है, अभी भी सिर गरम है।" श्रीरामकृष्ण देव ने उन्हें अपना अंतरंग पहचान लिया था और इसीलिए स्त्रियों के प्रति सावधान करते हुए कहते थे "देखो, तुमलोग माँ के अनुचर हो, उनके अनेक कार्य तुम्हें करने होंगे, कौए का खाया फल माँ की पूजा में नहीं लगता। इस कारण बहुत ही सावधानी के साथ रहना। सोने की स्त्री-भक्त के लोट पोट होने पर भी उस ओर घूमकर भी न देखना।" फिर किसी और दिन श्रीरामकृष्ण देव ने उनसे कहा था, 'देखो, मैं तुम लोगों को इतना प्यार क्यों करता हूँ, जानते हो? तुमलोग अपने जो हो! माँ ने तुम लोगों को प्यार करने के लिए कहा है।"

स्वामी विज्ञानानन्द को अनूठी आध्यात्मिक अनुभूतियाँ

होती थीं। एक वैज्ञानिक विवेचक होने के नाते उनकी अनुभूतियाँ विशेष महत्व रखती हैं। आरोग्य लाभ कर रहे स्वामी विज्ञानानन्द एक वार टहलते हुए काशी से सारनाथ पहुँच गये जहाँ उन्होंने एक ऐसी बुद्धमूर्ति का अवलोकन किया जिस पर उनके जन्म से लेकर महाप्रयाण तक का वृत्तान्त अंकित था। "अनुशीलन करते हुए पल भर में सब कुछ विलीन हो गया और वे एक छोटे विन्दु की तरह निराकार ज्योति-समुद्र के तीर खड़े अनायास ही अखण्ड शान्ति, ज्ञान और आनन्द में आत्म-विभोर हो गये। उनका क्षुद्र 'मैं' समाप्त हो गया और वे उस विशुद्ध चेतन-समुद्र में चिन्मय बुद्धदेव के एक अत्यन्त कमनीय एवं प्रेममय रूप की अनुभूति करने लगे। वे इस अपूर्व आनन्द के भाव में प्रायः तीन दिन तक डूबे रहे थे। किसी अन्य समय पेगु शहर में बुद्धदेव की शय्याशायी मूर्ति को देखकर भी उन्हें यह अनुभूति हुई थी, "सौंदर्यमयी बुद्ध मूर्ति मानो जीवित है। आह! उनके सौन्दर्य की कैसी अपूर्व ज्योति है।' "क्रमशः सारनाथ देखने के बाद उनकी इच्छा हुई कि वे काशी में विश्वनाथ के दर्शन करेंगे। क्षण भर को उनके मन में यह विचार आया, 'जाकर क्या होगा? विश्वनाथ तो पत्थर की मूर्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं।" किन्तु जब वे विश्वनाथ के मन्दिर में प्रविष्ट हुए तो देखते हैं, "वहां विश्वनाथ की लिंग मूर्ति नहीं है, जीव जगत भी नहीं है—मात्र एक निराकार सत्ता विराजमान है।" सेवाश्रम के भवन-निर्माण काल में एकबार जब वे दुर्घटनाग्रस्त होकर पीड़ा से छटपटा रहे थे तब उन्हें स्वप्न में जटाजूटधारी शिव के दर्शन हुए। तत्पश्चात् उनकी पीड़ा समूल नष्ट हो गयी। इलाहाबाद में त्रिवेणी देवी ने भी उन्हें एक बालिका के रूप में दर्शन दिये थे। रामायण का अंग्रेजी अनुवाद करते समय हुई अनुभूति को प्रकाशित करते हुए उन्होंने कहा था, "जब मैं रामायण लिखने बैठता था, उस समय संसार भूल जाता था और सामने ही राम, लक्ष्मण, सीता और महावीर को प्रत्यक्ष देखता था।"

श्रीरामकृष्ण देव के देह-त्याग के समय स्वामी विज्ञानानन्द पटना में थे। उस रात उन्होंने श्रीरामकृष्ण देव के दिव्य दर्शन किये थे, 'देखा, वे मेरे पास आकर खड़े हैं। मैंने सोचा—अरे! ठाकुर यहाँ क्यों आये हैं? उन्हें मैंने इस प्रकार क्यों देखा? उसके दूसरे दिन ही अखबार से उन्हें देह-त्याग की खबर मिली।" इसी प्रकार उन्हें स्वामी विवेकानन्द के भी दर्शन हुए थे, "स्वामीजी महाराज के शरीर-त्याग के समय भी मुझे एक अलौकिक दर्शन हुआ था। मैं इलाहाबाद में ब्रह्मवादिन क्लब के ठाकुर घर में बैठा ध्यान कर रहा था। देखा कि स्वामी जी ठाकुर की गोद में बैठे हुए हैं। देखकर सोचा—अरे, यह क्या? बाद में बेलुड़ मठ से तार आया कि स्वामीजी ने देह-त्याग कर दी है।" बेलुड़ मठ में सन् १९३८ में मन्दिर प्रतिष्ठा-कार्य समापन के पश्चात् अपने कमरे में लौटने पर वहाँ उपस्थित भक्तों से उन्होंने कहा था, 'स्वामीजी से मैंने कहा, "स्वामीजी, आपने उपर से देखने की बात कही थी, आज देखिए, आपके ही प्रतिष्ठित ठाकुर नये मन्दिर में बैठ गये हैं। उस समय मैंने स्पष्ट देखा—स्वामीजी, राखाल महाराज, महापुरुष महाराज, शरत् महाराज, हरिमहाराज, गंगाधर महाराज आदि सभी लोग खड़े हैं।"

सन् १९२५ में स्वामी विज्ञानानन्द कांग्रेस अधिवेशन देखने कानपुर गये थे और इसके सम्बन्ध में उन्होंने कहा था, "जहाँ अच्छे काम के लिए इतने अधिक व्यक्तियों का समागम होता है, जान लेना कि वहाँ अवश्य ही ईश्वर की पूजा होती है। संघबद्ध होकर काम करना भी ईश्वर की पूजा है। कुछ भी हो, देश के कल्याण विषय में चिन्ता तो हो रही है। एकता में भगवान की शक्ति का विकास होता है। ऐसा लगता है मानो हमारा देश फिर जाग उठेगा।" स्वामी विज्ञानानन्द की देशभक्ति सराहनीय थी। "संसार के कितने ही राष्ट्र काल के गर्त में समा गये। यदि देशवासी अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार देश की सेवा नहीं करेंगे, तो हमारे देश की भी वही अवस्था होगी। देश किसी व्यक्ति विशेष का नहीं है, वह तो सारे देशवासियों का है। जो चाहे जिस अवस्था में क्यों न हो, सभी को मातृभूमि की सेवा, जनसाधारण की सेवा तथा सर्वोपरि भगवान की सेवा थोड़ी बहुत करनी ही चाहिए। सबका कल्याण हो, विश्व-ब्रह्माण्ड का कल्याण हो, यही कामना सर्वदा बनाये रखो।"

×

गतांक से आगे

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन-कथा

— चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

९. दीक्षा एवं शिक्षा

(प्रणिपात के साथ ही सेवा की भी शिक्षा देने की प्रणाली, लाटू को वचनबद्ध करना, गोपाल दादा की बातें, सेवा की साधना में गुरु की आवश्यकता, गुरु की मूर्ति में सेव्य के स्मरण का उपाय, सेवा को जीवन का सर्वस्व बनाना, श्रीमत् लाटू ठाकुर को किस भाव से देखते थे, नारायण अयंगार का प्रसंग, सेव्य के समक्ष आत्मनिवेदन, स्वभाव में विभिन्नता के अनुसार साधक की साधना पद्धति में विभिन्नता, श्रीरामकृष्ण की कहानी और लाटू महाराज की टीका)

प्रणिपात तत्त्व के साथ ही ठाकुर ने लाटू को सेवातत्त्व के विषय में भी शिक्षा प्रदान की थी। सेवा के प्रसंग में एक दिन ठाकुर ने लाटू को कहा था—"देख लेटो! कहीं तू बाहर का देखकर भूल न जाना। अरे! इसकी (हाड़मांस के ढाँचे की) सेवा से कुछ नहीं मिलता। इसके भीतर जो निवास करते हैं, उनकी सेवा करने से सबकुछ प्राप्त होता है।"

इस पर लाटू महाराज ने जो कुछ कहा था और उसे बूढ़े गोपाल दादा से जैसा हमने सुना है, वैसा ही लिपिबद्ध कर रहे हैं। केवल ब्रैकेट के अन्दर लिखी बातें हमने योग कर दी हैं—

लाटू—इसके भीतर फिर कौन हैं? मैं तो नहीं जानता।

ठाकुर—अरे! इसी के भीतर तो भगवान हैं। शिव ही जीव बनकर इस देह में निवास कर रहे हैं।

ठाकुर की यह बात सुनकर लाटू मौन रह गये। फिर ठाकुर मानो थोड़ी दृढ़तापूर्वक बोले—"देखना लेटो! तू कहीं इसे (अपने शरीर की ओर संकेत करते हुए) भूल न जाना। इसे मानकर तो चल सकेगा न? देख बेटा! कहीं इसे भूल न जाना, खबरदार इसे भूलना नहीं।" इसे सुनकर लाटू की एक विचित्र अवस्था हो गयी। बाद में वे हाथ जोड़कर ठाकुर से कहने लगे—"मेरे ऊपर आपकी इतनी दया है, आप इतना प्रेम करते हैं, आपको भला मैं भूल सकता हूँ? आपको न मानने पर तो मैं नमक हराम हो जाऊँगा। मैं आपका हुकुम तामिल करूँगा। आपकी बात न भूलूँगा।"

लाटू की बात सुनकर ठाकुर ने हँसते हुए कहा—"अरे, मेरी बात नहीं। यहाँ की बात माननी होगी।" यह कहते हुए उन्होंने पुन: अपने सीने पर ऊँगली रख दी।

इस पर लाटू ने उत्तर दिया- "वहाँ की बात मैं नहीं जानता। आप मुझे वहाँ की बात समझा दीजिए न !"

सेवक लाटू की यह बात सुनकर ठाकुर ने (बूढ़े गोपाल दादा को सुनाते हुए) कहा—"अजी गोपाल ! सुनो तो लाटू क्या बोलता है ! कहता है कि वहाँ की बात समझा दीजिए। वहाँ की बात क्या समझायी जा सकती है ? तुम्हीं कहो न भाई ! देखो कैसी जिद कर रहा है !"

ठाकुर की इस विनोदपूर्ण बात पर गोपालदादा ने कहा था—"आपको तो ज्ञात है, बता दीजिए न।"

इस पर ठाकुर बोले—"अजी ! यह तुम्हारी कैसी बात है ! वहाँ की बात क्या बतला देने की है ?"

बूढ़े गोपाल दादा ने उत्तर दिया—"वहाँ की बात सुनने के लिए ही तो हम सब आये हुए हैं ! आपके बताये बिना हमलोग कैसे जान पायेंगे।"

ठाकुर (मन्द हास्य के साथ)—अभी नहीं, अभी नहीं। वहाँ की बात अभी नहीं। समय आने पर एक दिन तुमलोग सब समझोगे।

यहीं पर हम बूढ़े गोपाल दादा की बात को समाप्त करते हैं।

सेवा रूपी साधना की शिक्षा देने के पूर्व ठाकुर ने क्यों इस प्रकार सेवक लाटू की स्वीकृति माँगी यह बात हमें पता नहीं। हमारा अनुमान है कि सेवारूपी साधना की शिक्षा के मूल में जो गुरु करने की आवश्यकता है, इसीलिए परमहंसदेव ने उक्त सेवक से ऐसी स्वीकृति माँगी। ठाकुर कहते थे—"उपदेश के अनुसार शिष्यों के ठीक-ठीक न चलने पर उत्तम गुरु जोर जबरदस्ती तक करते हैं।" क्या इसी कारणवश परमहंसदेव ने सेवक से ऐसा वचन ले लिया था ?

वस्तु. इसमें कोई सन्देह नहीं कि सेवक धर्म में दीक्षित होने के लिए गुरु बनाने की आवश्यकता है। क्योंकि गुरुहीन सेवक लंगरहीन नाव के समान कर्म समुद्र में बहता रहता है। वे इसकी धारणा नहीं कर पाते कि सेवक-धर्म का लक्ष्य क्या है। इस कारण उनकी कर्मप्रेरणा में रजोगुण का प्राबल्य रहता है और कर्मचक्र के गोरख धन्धे से बाहर निकलने का रास्ता ढूँढ़ते हुए असफल होकर वे क्लान्त, अशान्त तथा बेचैन हो जाते हैं। लाटू के समान सात्त्विक युवक कहीं अपरिपक्व अवस्था में ही कर्मोद्दीपना में डूबकर राजसिक न हो जायँ इसीलिए परमहंसदेव ने उन्हें इस विषय में सावधान कर दिया था, और कहा था—"अरे ! देखना कहीं इसे भूल न जाना।"

सेवक लाटू ने जीवन भर उसी एक आदेश का पालन किया था। उन्होंने किसी भी दिन उन्हें विस्मृत नहीं किया था, किसी भी दिन उनकी अवज्ञा नहीं की थी, किसी भी दिन उनके प्रति अकृतज्ञता नहीं व्यक्त की थी। केवल दक्षिणेश्वर निवासकाल में ही नहीं, केवल ठाकुर के जीवनकाल में ही नहीं, अपितु, ठाकुर के लीला संवरण के उपरान्त भी लाटू की एकमात्र वही कामना थी—"कहीं उन्हें भूल न जाऊँ।"

इस प्रकार ठाकुर ने सेवक के मन में सेव्य का स्मरण रखने का कौशल दृढ़तापूर्वक बैठा दिया। ठाकुर ने सेवक के समक्ष अपने को गोपनीय रखते हुए उसे सेव्य के स्मरण-मनन में समय बिताने का आदेश दिया। उन्होंने यह न जानने दिया कि वे स्वयं ही वे (सेव्य) हैं; तथापि यह संकेत दिया कि उनको पकड़ने से उन्हीं तक पहुँचा जा सकेगा। सेवक लाटू ने भी उन तक पहुँचने के लिए उन्हीं (ठाकुर) को लेकर सेवा कार्य आरम्भ किया था। लाटू ने इतनी दृढ़तापूर्वक उन्हें (ठाकुर को) अवलम्बन कर साधन-जीवन प्रारम्भ किया था कि परवर्ती काल में उनके गुरुभाईगण भी उन्हें देखकर कह उठते थे—"ठाकुर को लेटो ने ही ठीक-ठीक पकड़ रखा है, हमलोग तो केवल उनके उपदेशों की जुगाली करते रहे हैं।" [यह बात हमने श्री 'म' के मुख से सुनी है। श्री 'म' ने इसे अपनी बात नहीं कही, वरन् नरेन भाई (विवेकानन्द) की बात

कहकर उद्धृत की थी ।]

लाटू महाराज को देखे बिना हम कभी यह न समझ पाते कि एक व्यक्ति के लिए किसी दूसरे को अपना 'जीवन-सर्वस्व' बना लेना सम्भव है । हम मानते हैं कि अनेक लोग दूसरों के लिते प्राण तक दे सकते हैं, परन्तु अहंकार और आत्माभिमान को त्याग कर कोई किसी को अपना 'सर्वस्व' कह सके ओर तदनुसार जीवन यापन कर सके, ऐसा जीवन वस्तुत: जगत् में बड़ा दुर्लभ है ।

तथापि विस्मय तो इस बात का है कि सेवक लाटू न तो परमहंसदेव को अवतार मानते थे और न ही परवर्तीकाल में उनकी अवतार भाव से पूजा की थी, बल्कि अपने काशी निवासकाल में उन्होंने श्रीयुत् नारायण अयंगार (श्रीवासानन्द) के प्रश्न के उत्तर में कहा था—"ऐसा होने पर भला क्या उनकी सेवा की जा सकती है, उनके समीप रहा जा सकता है ?"

लाटू महाराज के इस उत्तर से सन्तुष्ट न होकर उक्त दक्षिण भारतीय भक्त ने पुन: पूछा—'ठाकुर को आप क्या मानते हैं ?'

लाटू महाराज—वे सिद्धपुरुष हैं, महापुरुष हैं, और क्या मानूँगा ?

इस पर भी सन्तुष्ट न होकर उन भक्त ने फिर प्रश्न किया—"क्या ठाकुर आपको भगवान प्रतीत होते हैं ?"

लाटू महाराज—अरे ! उन्हीं का तो कथन है—शिव ही जीव के रूप में घट घट में विराजते है । तुम्हारा पता नहीं यह कैसा भाव है ! वे क्या थे यह बात भला मैं कहाँ समझ सका था ! नोरेन भाई ने थोड़ा समझा है—उसी ने तो हमलोगों को समझाया ।

नारायण अयंगार—क्या समझाया, महाराज ?

लाटू महाराज—उनकी पुस्तकें पढ़ो, सब मिलेगा ।

नारायण अयंगार—वे तो ठाकुर को अवतार नहीं कहते ।

लाटू महराज (हँसते हुए)—दस अवतारों में तो उनका नाम नहीं मिलता, इसलिये विवेकानन्द भाई ने ठीक ही तो कहा है । भागवत में कहाँ है ?

नारायण अयंगार—मुझे तो अभी भी विश्वास नहीं होता है, महाराज !

लाटू महाराज (थोड़ी नाराजगी का अभिनय करते हुए)—फिर मुझसे क्यों पूछते हो ? मैं जो कुछ कहूँगा, उस पर तुम्हें विश्वास होगा क्या ? तुम्हें जैसा लगता है, वैसा ही तुम उन्हें मानते हो । मेरी बात पर तो तुम्हें विश्वास नहीं होगा । तुम देख रहे हो कि मैं अब भी उनके लिए बैठा हुआ हूँ । मैं जानता हूँ कि उन्हें छोड़ मेरी और कोई गति नहीं !*

परमहंसदेव का संग पाने के बाद से ही सेवक लाटू के मन में यह भाव कि 'उन्हें छोड़कर मेरी और कोई गति नहीं है' अत्यन्त दृढ़ हो उठा था । यौवन के आरम्भ में ही यह भाव दृढ़ हो जाने के कारण सेवक लाटू के मन का अन्तर्द्वन्द्व कम हो गया था तथा श्रीरामकृष्ण के शरणागत हो जाने के फलस्वरूप स्व-कर्त्तृत्व का बोध दूर हो गया था । (क्रमश:)

*यह वार्तालाप हमें श्री विभूतिभूषण मैत्र से प्राप्त हुआ है । श्रीयुत अयंगार के लाटू महाराज के साथ साक्षात्कार के समय वे भी उपस्थित थे । साधु सिद्धानन्द संग्रहित 'सत्कथा' नामक बंगला ग्रन्थ में इसी का सार-संक्षेप दिया हुआ है ।

बेलुड़ मठ में एक अजनबी का आगमन

[यह घटना बेलुड़ मठ के एक वरीय संन्यासी-स्वामी ज्ञानात्मानन्द द्वारा लिखी गयी थी और "कथा साहित्य" मासिक पत्र के ज्येष्ठ १८८५ की संख्या में प्रकाशित हुई थी। बहुत साल पहले घटी इस घटना के वे प्रत्यक्षदर्शी थे। । इसके हिन्दी अनुवादक हैं— डा० विमलेश्वर डे। —सं.]

अपराह्न का समय था जब स्वामी त्यागीश्वरानन्द और मैं मठ की कुछ समस्याओं पर विचार-विमर्श कर रहे थे। हम दोनों मठ की उत्तर दिशा में, जहाँ श्रीरामकृष्ण देव के मानस-पुत्र और रामकृष्ण संघ के प्रथम अध्यक्ष—स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज का स्मारक-मन्दिर स्थापित है, उस मन्दिर के पास गंगा नदी के किनारे बैठे हुए थे। उस समय बेलुड़ मठ की चहारदिवारी नहीं थी जैसी कि आज है। इसलिए लोगों को मठ प्राङ्गण में आसानी से प्रवेश करने में किसी प्रकार की बाधा नहीं थी। इसी समय हमलोगों ने एक व्यक्ति को इधर आते हुए देखा। वे पैंट और शर्ट पहने हुए थे और उनके सिर पर एक टोपी भी थी। वे हमारे नजदीक आये और उन्होंने पूछा, "मैं स्वामीजी से मिलना चाहता हूँ—कैसे मिल सकूँगा?" बेलुड़ मठ में सिर्फ विवेकानन्द को ही "स्वामीजी" कह कर उल्लेख किया जाता है। अत: स्वामी त्यागीश्वरानन्दजी ने उनसे कहा कि स्वामी विवेकानन्द ने तो करीब चालिस वर्ष पूर्व ही अपना भौतिक शरीर त्याग कर दिया। यदि आप उनका कमरा देखना चाहते हैं, जिसके अन्दर बहुत सारे सामान, जिनका इस्तेमाल उन्होंने अपने जीवन काल में किया, संरक्षित हैं, तो देख सकते हैं। लेकिन वह कमरा चार बजे खोला जाता है। इस समय आप मठ में घूम कर और सब दर्शनीय स्थान देख सकते हैं। ठीक ४ बजे आप स्वामीजी के भवन के पास आ जायें जो गंगा नदी के किनारे पर स्थित है। इसी भवन की पहली मंजिल पर स्वामीजी का वह कमरा है।

स्वामी त्यागात्मानन्दजी ने उन आगन्तुक का शुभ नाम और कहाँ से वे आये हैं—उनसे पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि उनका नाम है कैप्टेन जॉन और वे नेताजी सुभाष चन्द्र बोस द्वारा संस्थापित आई. एन. ए. के एक भूतपूर्व पदाधिकारी हैं। उस समय वे एलगिन रोड पर स्थित नेताजी के पैतृक मकान में रह रहे थे और नेताजी के व्यक्तिगत सामानों के प्रदर्शनी-समारोह में उपस्थित रहने के लिए कलकत्ता आये थे। उनके उत्तर से स्वामीजियों ने ऐसा अनुमान किया कि भरसक नेताजी—जिनकी स्वामी विवेकानन्द के प्रति अपार श्रद्धा थी—के साथ इनका घनिष्ठ संबंध रहने के कारण, इनमें स्वामी विवेकानन्द के प्रति रुचि उत्पन्न हुई है और उनका दर्शन करने के लिए ये बेलुड़ मठ पधारे हैं। किन्तु उन्हें मालूम नहीं था कि स्वामीजी बहुत पहले ही अपना मर्त्य जीवन त्याग कर चुके थे।

ठीक ४ बजे, जब कि बेलुड़ मठ का फाटक आम दर्शकों के लिए खुल गया और स्वामी विवेकानन्द का कमरा भी खुल गया, वे आगन्तुक फिर आ पहुँचे और उन्हें स्वामीजी के कमरे में ले जाया गया। बहुत देर तक स्वामीजी की तस्वीरों तथा अन्य सामग्रियों को देखने के

(शेष पृष्ठ १८ पर)

स्वामी रंगनाथानन्दजी को इन्दिरागाँधी-पुरस्कार

नयी दिल्ली, ३१ अक्टूबर। दिवंगत प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की द्वितीय पुण्यतिथि के अवसर पर आज रामकृष्ण मठ, हैदराबाद के अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज को राष्ट्रीय एकता के निमित्त उनके द्वारा किये गये अथक, अनवरत एवं महनीय कार्यों के लिए भारत के प्रधान मंत्री श्री राजीव गांधी द्वारा १ लाख रुपये का प्रथम इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार प्रदान किया गया। विज्ञान भवन में आयोजित एक भव्य समारोह में प्रधानमंत्री ने अपने हाथों स्वामी रंगनाथानन्दजी को एक दुशाला प्रदान की तथा प्रशस्ति मूलक एक ताम्र-पत्र भी अर्पित किया। स्वामी रंगनाथानन्दजी ने घोषणा की कि बस्तर जिले (मध्य प्रदेश) के अबूझमार क्षेत्र के आदिवासियों के कल्याण के लिए इस पुरस्कार में प्रदत्त १ लाख रुपये की राशि व्यय की जायगी।

स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज द्वारा इस पुरस्कार को स्वीकार करना वस्तुतः महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्होंने इसके पूर्व पद्मभूषण की उपाधि सहित कई सम्मानों को यह कहकर स्वीकार नहीं किया कि रामकृष्ण संघ का साधु होना अपने आप में एक बहुत बड़ा सम्मान है।

"इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार" की चयन समिति द्वारा १०१ व्यक्तियों के नामों की सूची में से स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज का चयन भी एक विलक्षण अर्थ रखता है क्योंकि संयोगवश रामकृष्ण संघ की स्थापना के भी १०० वर्ष पूरे हो गये हैं और वह भी १०१ वें वर्ष में प्रवेश कर गया है। जिस प्रकार राष्ट्रीय एकता के लिए महत्वपूर्ण कार्य करनेवालों में स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज प्रथम घोषित हुए उसी भांति विगत १०१ वर्षों से भारत के सर्वाङ्गीण अभ्युत्थान के लिए समर्पित एवं मौन भाव से साधना करनेवाली संस्थाओं में रामकृष्ण संघ भी अद्वितीय ही है।

७८ वर्षीय स्वामी रंगनाथानन्दजी का जन्म १५ दिसम्बर, १९०८ ई० को केरल राज्य के त्रिकुर गांव में हुआ था। १८ वर्ष की उम्र में इन्होंने विश्व विख्यात रामकृष्ण संघ में अपने को अर्पित कर दिया।

स्वामीजी ने रूस आदि पाँच साम्यवादी देशों के अतिरिक्त ५० देशों की यात्रा की है और प्रायः प्रतिवर्ष विदेशों की यात्रा कर वहाँ भारतीय संस्कृति, दर्शन और वेदान्त के विषयों पर व्याख्यान देते रहे हैं। आपका जीवन भारत की भावात्मक एकता, आर्थिक अभ्युत्थान, नैतिक उत्कर्ष और सामाजिक समता के लिए सदैव समर्पित रहा है। दरिद्रों की शिव भाव से सेवा करना स्वामी रंगनाथानन्दजी का जीवन-दर्शन है। सेवा, सेवा और सेवा—भौतिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक सेवा निरंतर करते रहना—यही स्वामीजी का आत्म संगीत है जिसकी रागिनी से इन्होंने सारे भारत को विभोर किया है

हम स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज को इस पुरस्कार के लिए अपनी हार्दिक बधाइयाँ देते हैं और उनके स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन की कामना करते हैं।

छपरा में स्वामी आत्मानन्द

छपरा, २९ अक्टूबर। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव, प्रख्यात प्रज्ञावान् एवं विचारोत्तेजक वक्ता श्रीमत् स्वामी आत्मानन्दजी महाराज ने २४ से २८ अक्टूबर तक छपरा (बिहार) में आयोजित हनुमज्जयन्ती समारोह में हिन्दू धर्म में वर्ण-व्यवस्था, तुलसी के हनुमान तथा धर्म और विज्ञान विषयों पर सात प्रवचन दिये। ये प्रवचन बड़े ही तर्कसम्मत, विचारोत्तेजक एवम् हृदयग्राही थे। प्रत्येक प्रवचन में स्वामी आतमनन्दजी की गंभीर विद्वत्ता, वज्ञानिक दृष्टिभंगी तथा विषयोपस्थापन की मनोरमता की त्रिवेणी बहती दिखाई पड़ती थी। फलतः प्रायः दस हजार नर-नारी श्रोता बड़े मनोयोग एवं एकाग्रता पूर्वक इनके प्रत्येक प्रवचन को सुनते और सराहते रहे।

२६ अक्टूबर को स्थानीय श्रीरामकृष्ण-अद्भुतानन्द आश्रम के प्राङ्गण में स्वामी आत्मानन्दजी महाराज ने स्वामी अद्भुतानन्द के जीवन और कर्मों पर एक सारगर्भ एवं प्रेरक प्रवचन दिया तथा आश्रम की ओर से १२५ दरिद्र नर-नारियों को नवीन वस्त्र प्रदान किया। इस समारोह की अध्यक्षता छपरा नगरपालिका के अध्यक्ष श्री महेन्द्र प्रसाद ने की तथा श्रीरामप्रताप सिंह ने धन्यवाद ज्ञापन किया।